* वन्दे वेदमातरम् *

गायत्री-चित्रावली

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

अखण्ड-ज्योति संस्थान

मथुरा ।

चतुर्थ वार] सन् १९६७ ई० [मू० १·५० न. पै.

भूमिका
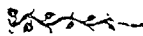
गायत्री की महिमा अपार है। वह भूलोक की कामधेनु है। संसार का कोई कष्ट ऐसा नहीं जो माता की कृपा से न कट सके और विश्व की कोई वस्तु ऐसी नहीं जो माता के अनुग्रह से प्राप्त न हो सके। हमने पिछले २४ वर्षों से लगभग २००० आर्ष धर्म-ग्रन्थों का अन्वेषण किया है और यह पाया है कि गायत्री से बड़ी शक्ति, साधन-क्षेत्र में और दूसरी नहीं है। यही चारों वेदों की माता है। भारतीय संस्कृति के समस्त ज्ञान-विज्ञान की यही आधार शिला है। इस ज्ञान-गङ्गा में स्नान करने वाली आत्मा के समस्त पाप-ताप कट जाते हैं।

हमने चौवीस-चौवीस लक्ष्य के अब तक चौवीस पुरश्चरण किए है। इस तपश्चर्या के जो व्यक्तिगत अनुभव हुए हैं उनसे हमारी यह अटूट मान्यता हो गई है कि सांसारिक समस्त सम्पत्तियों की अपेक्षा गायत्री उपासना अधिक मूल्यवान् है। इसी प्रकार जिन लोगों ने हमारे संरक्षण, सहयोग एवं परामर्श से माता की आराधना की है उनके परिणामों को देखते हुए भी हमें दृढ़ विश्वास है कि कभी किसी की गायत्री साधना निष्फल नहीं जाती। इस युग में इससे अधिक फलदायक, सरल, स्वल्प-श्रमसाध्य एवं हानि रहित साधना, दूसरी नहीं है।

महामहिमामयी सर्व शक्तिमान् गायत्री माता का महत्त्व समझाने एवं साधकों को ध्यान करने में सहायता करने वाली इस पुस्तक को प्रकाशित करते हुए हमें आशा है कि इनसे गायत्री उपासना करने वालों को प्रेरणा एवं सुविधा प्राप्त होगी। किस प्रयोजन के लिए, माता का किस स्वरूप, किस वर्ण, किस आकृति, किस मुद्रा, किस वाहन, किस स्थान में किस प्रकार ध्यान करना चाहिए यह सब रहस्य इन चित्रों में भली प्रकार प्रकट कर दिया गया है।

हर चित्र के साथ में उसके सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी देने वाला चित्र परिचय भी लगा दिया है जिससे पाठक तत्सम्बन्धी आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकें। साधना के समय इन चित्रों का ध्यान भी किया जा सकता है और गायत्री माता का महत्व भी इनके द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

अन्त में हम 'कल्याण स्टुडियो' के सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री 'जगन्नाथ' जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिनकी कलापूर्ण कलम से यह बहुमुल्य चित्र बने हैं।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य
धीमहि धियो
यो नः प्रचोदयात्

१—गायत्री महामन्त्र

गायत्री के अक्षरों का आपसी गुन्थन, स्वर-विज्ञान और शब्द-शास्त्र के ऐसे रहस्यमय आधार पर हुआ है कि इसके उच्चारण मात्र से सूक्ष्म शरीर में छिपे हुए अनेक शक्ति-केन्द्र अपने आप जागृत होते हैं। सूक्ष्म देह के अङ्ग-प्रत्यङ्गों में अनेक चक्र, उपचक्र, ग्रन्थियां, मातृकाऐं, उपत्यकाऐं, भ्रमर, मेरु आदि ऐसे गुप्त संस्थान होते हैं जिनका विकास होने से साधारण-सा मनुष्य प्राणी अनन्त शक्तियों का स्वामी बन सकता है।

गायत्री मन्त्र का उच्चारण जिस क्रम से होता है उससे जिह्वा, दाँत, कण्ठ, तालु, ओष्ठ, मूर्धा आदि में एक विशेष प्रकार के ऐसे गुप्त स्पन्दन होते हैं जो विभिन्न शक्ति-केद्रों तक पहुँच कर उनकी सुषुप्ति हटाते हुए चेतना उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार जो कार्य योगी लोग बड़ी कष्टसाध्य साधनाओं और तपस्याओं से बहुत काल में पूरा करते हैं वह महान् कार्य बड़ी सरल रीति से गायत्री के जप मात्र से स्वल्प समय में ही पूरा हो जाता है।

साधक और ईश्वर सत्ता गायत्री माता के बीच में बहुत दूरी है, लम्बा फासला है। इस दूरी एवं फासले को हटाने का मार्ग इस २४ अक्षरों के मंत्र से होता है। जैसे जमीन पर खड़ा हुआ मनुष्य सीढ़ी की सहायता से ऊँची छत पर पहुँच जाता है,

वैसे ही गायत्री का उपासक इन २४ अक्षरों की सहायता से क्रमशः एक-एक भूमिका पार करता हुआ, ऊपर चढ़ता है और माता के निकट पहुँच जाता है।

गायत्री का एक-एक अक्षर एक-एक धर्म-शास्त्र है। इन अक्षरों को व्याख्या स्वरूप ब्रह्माजी ने चारों वेदों की रचना की और उनका अर्थ बताने के लिए ऋषियों ने अन्य धर्म ग्रन्थ बनाये। संसार में जितना भी ज्ञान-विज्ञान है वह बीज रूप से इन २४ अक्षरों में भरा हुआ है। एक-एक अक्षर का अर्थ एवं रहस्य इतना अधिक है कि उसे जानने में एक-एक जीवन लगाया जाना भी कम है। इन २४ अक्षरों के तत्व-ज्ञान को जो जानता है उसे इस संसार में और कुछ जानने योग्य नहीं रहता।

गायत्री सबसे बड़ा मन्त्र है। इससे बड़ा और कोई मन्त्र नहीं। जो कार्य संसार के अन्य किसी मन्त्र से हो सकता है वह गायत्री से भी अवश्य हो सकता है। इससे वेदोक्त दक्षिण मार्ग और तन्त्रोक्त वाम मार्ग दोनों ही प्रकार की साधना हो सकती हैं।

---

(२)
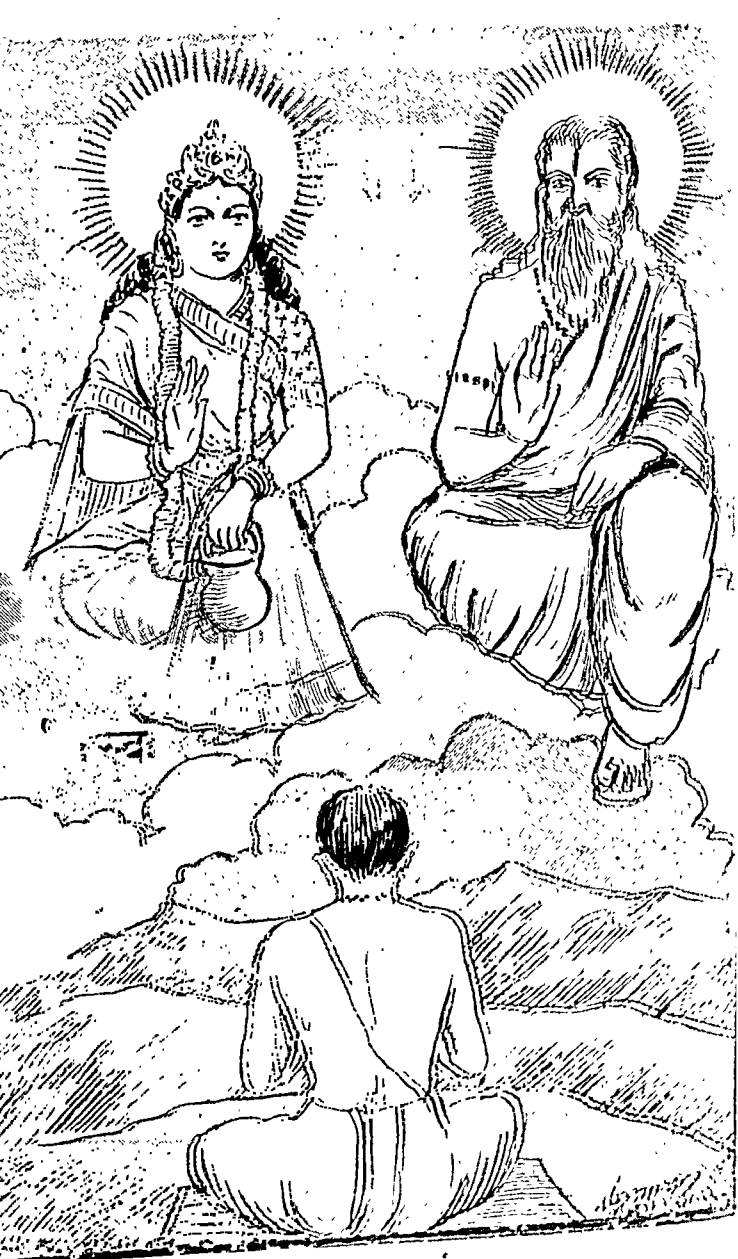
२—आध्यात्मिक माता-पिता

माता-पिता के रज वीर्य से सभी प्राणियों का जन्म होता है। दूसरे जन्म का होना, जिसे द्विजत्व कहते हैं मनुष्य की वास्तविक विशेषता है। यह दूसरा जन्म गायत्री माता और आचार्य पिता की दिव्य शक्तियों के समन्वय से होता है। यज्ञोपवीत संस्कार और गुरु-मन्त्र की विधिवत् दीक्षा इस दूसरे जन्म की, द्विजत्व की घोषणा समझी जाती है। इस घोषणा के बिना किसी को गायत्री का अधिकार नहीं मिलता। शास्त्रों में इसीलिए कहा गया है कि गायत्री का अधिकार द्विजों को है।

'निगुरा' (बिना गुरु का) भारतीय समाज में एक गाली है क्योंकि हर मनुष्य को अपने मानसिक विकास, सुधार, परिमार्जन, अंकुर एवं निर्माण के लिये एक सुयोग्य, अनुभवी, सच्चरित्र विद्वान् व्यक्ति की सुसंबद्ध, सहायता की आवश्यकता होती है। जिसे वह सहायता प्राप्त नहीं वह सुसंस्कृत कैसे बनेगा ? प्राचीन काल में हर व्यक्ति का एक धर्म-गुरु होता था। १—माता, २—पिता, ३—आचार्य, इन्हें क्रमशः ब्रह्मा-विष्णु, और महेश की उपमा दी गई है।

कहा गया है कि गायत्री मन्त्र कीलित है, जब तक उसका उत्कीलन न हो तब तक वह सफल नहीं होता। उत्कीलन का वास्तविक तात्पर्य है, प्राण-दीक्षा द्वारा मन्त्र का शक्ति-स्फुलिंग

अपने अन्तःकाल में स्थापित करना। जैसे होली की अग्नि लाव लोग अपने घरों में छोटी होली जलाते हैं उसी प्रकार कि गायत्री के नैष्ठिक उपासक से उसकी चिनगारी लेकर दीक्ष विधि द्वारा भीतर स्थापित की जाती है तो साधना में आशा-जनक सफलता मिलती है। केवल २४ अक्षर याद कर लेने मात्र से काम नहीं चल सकता।

साधक को अपनी साधना में गायत्री-माता और गुरु-पिता को अपने आत्मिक द्वितीय जन्म का प्रसवित मानना चाहिए। दोनों के प्रति श्रद्धा रखने वाला साधक इस महा-मन्त्र की साधना में सफल हो सकता है। एकांगी साधना वाला व्यक्ति ठीक प्रकार पथप्रदर्शन एवं प्रकाश प्राप्त न होने से अपना बहु-मूल्य समय निष्फल गँवाता रहता है!

गायत्री शक्तिमान् है, पर उस शक्ति का जागरण गुरु द्वारा होता है। निगुरा साधक बहुत प्रयत्न करने पर भी स्वल्प परिणाम प्राप्त करता है। इसीलिए उपासकों को उचित है कि आध्यात्मिक माता-पिता के लिये—गायत्री और गुरु के लिये समुचित श्रद्धा रखें।

****

भूर्भुवः स्वः
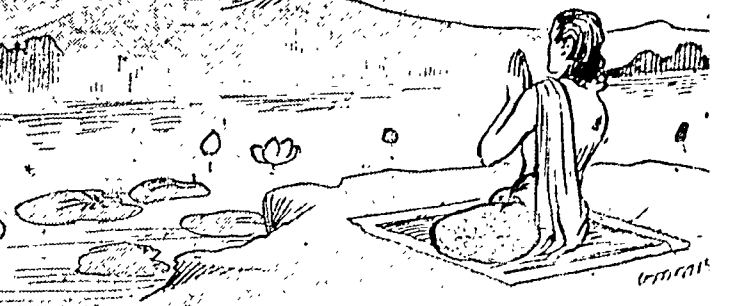
३—पंचमुखी, दशभुजी महाशक्ति

गायत्री की शक्ति, गति, क्रिया और प्रतिक्रिया को देखते हुए सूक्ष्म-दर्शी ऋषियों ने उसका चित्रण पञ्चमुखी और दशभुजी रूप में किया है। प्रणव व्याहृति और मन्त्र के तीन भाग यह गायत्री के पांच मुख हैं। पाँच देव भी इन पाँच मुखों के प्रतीक हैं। पाँच तत्वों में बना हुआ शरीर और पाँच कोशों से विनिर्मित शरीर, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियां, पाँच प्राण, पाँच उप प्राण, पाँच तन्मात्राएं, पाँच यज्ञ, पाँच अग्नि, पञ्च क्लेश आदि अनेक पञ्चकों का रहस्य, मर्म और तत्वज्ञान गायत्री मन्त्र के मुख से मुखरित होता है। विश्वव्यापी यह पाँच समस्याऐं सुलझाने के लिये गायत्री के पाँच अङ्गों में समस्त ज्ञान-विज्ञान मौजूद देखकर ऋषियों ने उसे पाँच मुखी चित्रित किया है।

पाँच मुखों का रहस्य जान कर साधन अपने सांसारिक जीवन में स्वास्थ्य, धन, विद्या, चातुर्य तथा दूसरों का सहयोग प्राप्त करता है और आत्मिक क्षेत्र में आत्म-ज्ञान, आत्म-दर्शन, आत्म-अनुभव, आत्म-लाभ और आत्म-कल्याण का अधिकारी बनता है। यह पाँच सांसारिक लाभ गायत्री की बांई पाँच भुजा हैं, और यह आत्मिक पाँच लाभ दाहिनी पाँच भुजाऐं हैं। दशभुजी गायत्री का चित्रण इसी आधार पर हुआ है। जैसे पूर्व, पच्छिम आदि १० दिशाऐं होती हैं वैसे ही जीवन विकास की

भी दश दिशा हैं। माता के दश हाथ साधक को इन दशों दिशाओं में समुन्नत करते हैं।

पञ्चमुखी और दशभुजी गायत्री का जो वर्णन ग्रन्थों में मिलता है वह एक भावना चित्र है, जिससे यह प्रकट होता है कि गायत्री की शक्ति, महिमा और प्रतिक्रिया मानव जीवन में किस प्रकार प्रकट होती है और उसमें कितने प्रकार के रहस्य छिपे हुए हैं। यह एक आलंकारिक रूप है। वास्तव में माता शक्ति रूप है, उसका कोई रूप नहीं। वह शब्द, रूप, आदि पञ्च भौतिक तत्वों से परे है। केवल ध्यान द्वारा उसको अपनी ओर आकर्षित करने के लिये किसी रूप या प्रतिमा की धारणा की जाती है।

गायत्री के पाँच मुख हैं, दस भुजाएें हैं, इतना ही नहीं उसके सहस्रों नेत्र, सहस्रों कान, सहस्रों चरण, सहस्रों हाथ हैं, वह सर्व व्यापिनी अन्तर्यामिनी, सर्वशक्तिमान् एव महा महिमा-मयी है। उसके सम्बन्धित ज्ञान-विज्ञान का समुद्र इतना गहरा है कि मनुष्य की बुद्धि उसे पार करने में असमर्थ ही रहती है। उसका तो आशीर्वाद ही अभीष्ट है। जो माता का कृपापात्र है उसी पर सब के सब रहस्य प्रकट होते हैं।

४—ब्रह्माणी (ब्रह्म-विद्या)

ईश्वर की अनन्त शक्तियों में से दिव्य ज्ञान का प्रकाश करने वाली परम सतोगुणी शक्ति को ब्रह्माणी, ब्रह्माणी या ब्रह्मविद्या कहते हैं। ब्रह्माजी ज्ञान के देवता हैं, वेद ज्ञान, तत्व-ज्ञान उन्हीं के द्वारा निःसृत होता है। ब्रह्मा के चार मुख, चारों वेदों के प्रतीक हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चारों फल इस ज्ञान के आधार पर ही प्राप्त होते हैं ! चार अवस्था, चार आश्रम, चार वर्ण, जीवों के चार वर्ग, संसार की चार दिशाऐं आदि चतुर्वर्गों की सम्पूर्ण समस्याऐं ब्रह्म-ज्ञान के आधार पर ही हल होती हैं इसलिए ब्रह्माजी को—ब्रह्म-विद्या को, चतुर्मुखी कहा गया है।

ब्रह्मा की शक्ति ब्राह्मी है। किसी देवता, जीव या पदार्थ की 'शक्ति' ही उसका सार है। शक्ति न रहे तो उसका नाम शेष रह जाता है, दूसरों को लाभ पहुँचाना तो दूर वह अपने अस्तित्व की रक्षा भी नहीं कर सकता। इसलिए ब्रह्मा की महत्ता भी उसकी ब्राह्मी शक्ति में ही मानी गई है। साधक इस सूक्ष्म भाग की, सार अंश की उपासना करते हैं। ब्रह्मा की अपेक्षा ब्राह्मी शक्ति की महत्ता इसलिये अधिक है कि वह एव विस्तृत देव-तत्व का निचोड़ा हुआ अत्यन्त प्रभावपूर्ण तत्व है गायत्री को इसीलिये 'ब्राह्मी' कहते हैं कि वह ब्रह्म ज्ञान के केन्द्रीय तत्व शक्ति है !

गायत्री के ब्राह्मी स्वरूप की उपासना करने से साधक के अन्तःकरण में ब्रह्म-ज्ञान, तत्व बोध, ऋतम्भरा प्रज्ञा, एवं सूक्ष्म दृष्टि का आविर्भाव होता है। जिससे माया का अज्ञानान्धकार हट जाता है और जीव प्रकृति एवं ईश्वर का पारस्परिक सम्बंध भली प्रकार समझ में आ जाता है। जो ज्ञान असंख्यों ग्रन्थ पढ़ने और हजारों विद्वानों के प्रवचन सुनने से प्राप्त नहीं होता वह ब्राह्मी-शक्ति की कृपा से साधक की अन्तःभूमि में स्वयमेव प्रकट हो जाता है। उस महा शक्ति द्वारा फेंकी हुई ज्ञान-किरण जब मनुष्य के मानस तथा हृदय में प्रवेश करती है तो उसके दिव्य प्रकाश में सत्य का, आत्मा का, साक्षात्कार होता है।

ब्रह्म-ज्ञान हो जाने का फल है जीवन-मुक्ति। आत्मा स्वयं आनन्द-स्वरूप है, आत्म-ज्ञान होने के साथ-साथ साधक को ब्रह्मानन्द का ऐसा रसास्वादन होता है जिसकी तुलना में संसार के समस्त रस उसे अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होते हैं।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
ोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात

५--परम पोषक वैष्णवी

परमात्मा का रजोगुणी रूप विष्णु है। विष्णु की शक्ति को वैष्णवी कहते हैं। विष्णु का वाहन गरुड़ है, वैष्णवी भी गरुड़ पर आसीन हैं। गरुड़ रजोगुण का प्रतिनिधि है। वैष्णवी इसी रजोगुण से प्राणी को जीवन का रस पिलाकर उसे परिपुष्ट करती है।

माता अपने बालक पर सब कुछ निछावर करती है। उसकी गोदी में पहुँच कर वह सब प्रकार से निश्चिन्त और निर्भय हो जाता है। माता प्रिय से प्रिय वस्तु उसे देने में संकोच नहीं करती परन्तु ऐसा तभी होता है जब बालक सर्वतोभावेन अपने को माता के प्रति अर्पण कर देता है। जब तक बालक पूर्णतया माता पर अवलम्बित रहता है तब तक वह उसे एक क्षण के लिए भी नहीं भूलती।

जैसे-जैसे बालक अपना स्वार्थ पहचानने लगता है, वैसे-वैसे वह माता की उपेक्षा का पात्र बनता जाता है। देखा गया है कि जब वही बालक बड़ा हो जाता है तो माता के स्नेह को, वात्सल्य को भूल जाता है, उसके मन में कृतज्ञता एवं श्रद्धा बिल्कुल नहीं रहती, स्वाभाविक एवं सच्ची भक्ति से वह कभी माता के चरणों पर अपना मस्तक नहीं नवाता। हाँ, जब कुछ मतलब निकालना होता है तो चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर माता से अपना स्वार्थ सिद्ध करा लेने का जाल बिछाता है। अनेक

साधक भी ऐसा ही करते हैं। उनमें आद्य-शक्ति, जगज्जननी
प्रति स्वाभाविक श्रद्धा-भक्ति का एक कण भी नहीं होता, प
जब कुछ काम अटकता है तो उसकी सहायता के लिए नान
प्रकार से डंडौत करते हैं। माता घट-घट वासिनी है। वह सच्चे
और झूठे, निःस्वार्थ भक्त और स्वार्थी चापलूसों का अन्तर भली
भाँति जानती है। खुदगर्जों के सामने वह कभी-कभी एक टुकड़
भी फेंक देती है कभी-कभी दुत्कार भी देती है। जो हो, ऐसे
लोगों के प्रति उसके मन से सच्ची ममता कदापि उत्पन्न नह
होती।

सच्चा भक्त माता से वस्तुऐं नहीं माँगता, उसका प्रेम माँगता है। अपना सर्वस्व माता को सौंप देता है और उसकी गोदी में नवजात शिशु की तरह निश्चिन्त होकर विश्राम करता है। ऐसा भक्त निश्चय ही अपने को अनन्त शान्ति की गोद में अनुभव करता है। उसे ही माता का सच्चा प्रेम और संरक्षण प्राप्त होता है। सर्वशक्तिमान् माता की गोद में किलोल करता है उसे कोई अभाव एवं कष्ट पीड़ित नहीं कर सकता। वैष्णवी का रजोगुण उसके जीवन की सभी आवश्यकताऐं पूरी करता रहता है।

ॐ भूर्भुवः स्वः

६—शाम्भवी दिव्य-शक्ति

शिव को योगेश्वर भी कहते हैं। योग की समस्त शक्तियों और सिद्धियों के उद्गम केन्द्र वे ही हैं। मस्तक पर चन्द्रमा तत्वज्ञान का प्रतिनिधि है। गले में सर्पों का होना, दुष्ट और पतितों को भी कंठ से चिपटाने की साधुता का द्योतक है। वृषभ वाहन मजबूती, दृढ़ता, स्थिर चित्त, श्रम-शीलता, एवम् पवित्रता का प्रतीक है। शिव इन्हीं गुणों के समूह हैं। वे संहारक हैं, दोष, दुर्गुण, अनाचार, अविचार और अनुपयुक्तता का संहार करते हैं। अनावश्यक का निवारण और आवश्यक का सञ्चार करने का कार्य ईश्वर के शिव स्वरूप द्वारा होता है। शिव की चेतना और गतिशीलता को शांभवी शक्ति कहते हैं।

गायत्री के शांभवी स्वरूप का आश्रय लेने से जो गुण शिव के हैं, शांभवी के हैं उन्हीं का प्रसाद साधक को भी मिलता है। वह शिवत्व की ओर बढ़ता है और त्याग वैराग्य, संयम, साधुता के अतिरिक्त वह योग की आध्यात्मिक शक्तियों से भी सम्पन्न होता चलता है। शिव के तीन नेत्र थे। तीसरा नेत्र जिसे दिव्य-चक्षु कहते हैं, आत्म तेज से परिपूर्ण होता है। यह तीसरा नेत्र शांभवी शक्ति के उपासक का भी

खुलता है। जैसे संजय ने अपनी दिव्य दृष्टि से महाभारत का सारा वृत्तान्त घर बैठें देखा था और युद्ध का सारा विवरण धृतराष्ट्र को सुनाया था वैसी दिव्य दृष्टि तीसरा नेत्र खुलने से होती है। संसार की सभी ज्ञात-अज्ञात बातें उसे विदित हो सकती है। दूसरों के मनोगत विचारों को जान लेना सहज हो जाता है, भूतकालीन इतिहास एवं भविष्य की होतव्यता का भी बहुत कुछ पता लग जाता है। पारदर्शी काँच में होकर जैसे भीतर की वस्तुऐं दिखाई पड़ती हैं वैसे ही संसार के अनेकों रहस्य उसे अपनी दृष्टि से प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगते हैं।

शिवजी ने तीसरा नेत्र खोल कर कामदेव को जला दिया था। इसी ब्रह्मतेज के बल से ऋषियों के शाप से मनुष्य भस्म तक हो जाते थे। सगर राजा के सौ पुत्र इसी प्रकार भस्म हुए थे। यह ब्रह्मतेज एक प्रकार का विद्युत् प्रवाह है जिसका शक्तिपात करके किसी को लाभान्वित भी किया जा सकता है, उसे अपना बल देकर शक्ति सम्पन्न भी बनाया जा सकता है। साथ ही तांत्रिक मार्ग से उपयोग करने पर अभिचार, मारण, आदि के हानिकारक शाप भी फलितार्थ किये जा सकते हैं। परन्तु इस ब्रह्मतेज को सांसरिक प्रयोजनों में खर्च करने की भूल न करनी चाहिए उसका तो एक मात्र सदुपयोग आत्म-कल्याण के लिए ही है।

ॐ भूर्भुवः स्व

७—उद्धारकर्त्री माता

जीवन में कष्ट और कठिनाई की कमी नहीं। मनुष्य के सामने आये दिन संकट आते रहते हैं। इन में से कई बाधाऐं तो इतनी विकट होती हैं कि उनसे छूटना दुस्तर मालूम देता है। मनुष्य जब अपनी तुच्छ सामर्थ्य और परिस्थिति की भयङ्करता की तुलना करता है तो उसकी हिम्मत छूट जाती है, आँखों के सामने निराशा-पूर्ण अन्धकार दिखाई पड़ता है। संसार में अपना कोई सहायक भी नहीं मिलता और उस भयङ्कर परिस्थिति के टलने की सूरत नहीं दीखती। ऐसी परिस्थिति में यदि कोई व्यक्ति सच्चे हृदय से माता की पुकार करता है तो ग्राह से गज को बचाने के लिए नंगे पैर भागने वाले भगवान् की तरह माता, सहायता को आती है। द्रौपदी की लाज बचाने के लिए चीर बढ़ाने की शक्ति माता में मौजूद है।

संसार को भव-सागर कहा गया है उसमें ऐसे मगर-मच्छों की कमी नहीं जो हमें निगल जाने लिए हर घड़ी घात लगाये रहते हैं। जब भी उन्हें मौका मिलता है तभी धर दबोचते हैं और बोटी-बोटी नोंच डालते हैं। इन महा-ग्राहों से बचने का प्रयत्न मनुष्य करता है, कई बार अपनी प्राण रक्षा कर भी लेता है, पर कभी ऐसे भी अवसर आते हैं जब हाथ

पाँव फूल हो जाते हैं और निराशा एवं किकर्तव्य विमूढ़त
सामने आ खड़ी होती है। ऐसे अवसरों पर माता की करुण
डुबते को बचा सकती है। उसकी भुजाओं में वह सामर्थ्य है कि
भव-सागर से अपने भक्त को उबार ले और मगरमच्छों से
उसके प्राण बचा दे।

मनुष्य के पास अपना बल बहुत सीमित है। उससे वह
बहुत थोड़े काम कर सकता है और बहुत थोड़ी सफलता पा
सकता है। परन्तु जब गायत्री महाशक्ति का बल उसे प्राप्त हो
जाता है तो लङ्का को राम की सहायता से फतह करने वाले
वानरों की तरह उसका साहस और बल बहुत बढ़ जाता है
एवं दुस्तर कठिनाई स्वल्प प्रयत्न में ही सरल बन जाती है।
उसे अनुभव होता है मानो सफलता की देवी ने प्रसन्न होकर
स्वयं ही मुझे गोदी में उठा लिया और महान् आपदाओं से बचा
दिया है।

महान् उद्धारकर्त्री माता अपने भक्तों को डूबने नहीं
देती। जो उसकी शरण में जाता हैं वह उबरता ही है। उनकी
शरणागति से बढ़ कर और कोई नौका ऐसी नहीं जो संसार
सागर से सरलता पूर्वक तार सके। जिसने माता की भुजाओं
का संबल पकड़ लिया वह पतन के गर्त में नहीं गिर सकता,
वह ऊपर को ही उठेगा।

———

ॐ भूर्भुवः स्वः

८—सद्गुरु की प्राप्ति

जीवन के हर क्षेत्र में शिक्षक की आवश्यकता है। जो कार्य अनजान आदमी मुद्दतों में नहीं कर पाता वह अनुभवी शिक्षक की सहायता से बड़ी सरलता पूर्वक पूरा हो जाता है। भौतिक प्रयोजनों में तो चाहे बिना शिक्षक के काम चल जाय पर अध्यात्ममार्ग में, विशेष कर गायत्री उपासना में तो बिना गुरु के थोड़ी भी प्रगति नहीं हो पाती। पुस्तकों या प्रवचनों से एक सैद्धान्तिक जानकारी मिलती है, व्यक्तिगत कार्य-प्रणाली को निर्धारित करने के लिए तो व्यक्तिगत पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है, जिसे कोई अनुभवी ही कर सकता है।

सद्गुरु का मिल जाना, आधी सफलता मिल जाने के बराबर है। परन्तु यह कार्य है बड़ा कठिन, क्योंकि एक तो सुयोग्य पथ प्रदर्शकों का ही अभाव हो चला है, जो है वे पहचान में नहीं आते, क्योंकि असली की अपेक्षा नकली वस्तु अधिक चमकीली और लुभावनी होती हैं। सच्चे सन्त सीधे सरल ढङ्ग से रहते हैं जिससे वे मामूली आदमी प्रतीत होते हैं। उनकी महिमा साधारण दृष्टि से समझ में नहीं आती। नकली लोग जो बहुत आडम्बर बनाये होते हैं, वे भोले साधक को ठीक रास्ता बताने में समर्थ नहीं होते क्योंकि जो रास्ता स्वयं ही नहीं देखा है वह दूसरों को कैसे दिखाया जा सकता है।

गायत्री माता की कृपा जब साधक पर होती है तो बड़ी सरलता से, स्वल्प प्रयास में ही सद्गुरु की प्राप्ति हो जाती है। बहुत ढूँढ-खोज नहीं करनी पड़ती और पथ-प्रदर्शन के लिए उनसे बहुत प्रार्थना एवम् खुशामद भी नहीं करनी पड़ती। सहज ही पथ-प्रदर्शन आरम्भ हो जाता है और बाधाओं के घने वन में से उङ्गली पकड़ कर वे सरल मार्ग से परम लक्ष्य तक पहुँचा देते हैं। रास्ते के कुश-कंटक, सर्प, बिच्छू उसे कोई हानि नहीं पहुँचा पाते और दिशा भूल होने का भी भय नहीं होता। बालक ध्रुव को नारद जी का सहज पथ-प्रदर्शन मिल गया था, इसी प्रकार जिस पर माता की कृपा होती है उसे भी कोई न कोई सच्चा सहायक एवम् पथ-प्रदर्शक सद्गुरु अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

ॐ भूर्भुवः स्वः

९—अनिष्टों का निष्कासन

जैसे काँटा शरीर के किसी भाग में चुभ जाय या कोई विजातीय विष किसी भाग में प्रवेश कर जाय तो वहाँ तब तक पीड़ा होती रहती है जब तक कि उस हानिकारक तत्व का निष्कासन न हो जाय। मनुष्य के जीवन में जो नाना प्रकार की व्याधियाँ, यातनाएं, कठिनाइयाँ एवं पीड़ाऐं हैं वे किन्हीं कारणों की वजह से हैं। जब तक वे कारण दूर नहीं किये जाते तब तक क्लेशों, चिन्ताओं और दुःखों से छुटकारा नहीं मिल सकता।

इन्द्रियों का असंयम, खुदगर्जी, कुटिलता, कटुभाषण, अविश्वास, आलस्य, दुर्व्यसन, कुसङ्ग, दुष्कर्मों में प्रवृत्ति, पाप की निन्दा से लज्जित होने की निर्लज्जता, ईश्वरीय दण्ड की उपेक्षा, अनुचित लोभ, मोह ममता की अति, अहङ्कार की ऐंठ आदि अनेक ऐसी बुराइयाँ हैं जो मनुष्य के मन में जब घुस बैठती हैं तो मनस्तल को काँटे की तरह नोंचती हैं, उसकी प्रतिक्रिया नाना प्रकार के क्लेश, कलह, दुःख, दारिद्रच, दंड आदि के रूप में सम्मुख आती है। जहाँ अग्नि रहती है वहाँ गर्मी अवश्य ही होगी, ऐसा नहीं हो सकता कि अग्नि तो रहे पर उसके कारण उष्णता पैदा न हो। इसी प्रकार जहाँ उपर्युक्त बुराइयाँ होंगी वहाँ नाना प्रकार के दुःख अवश्य ही रहेंगे। यह हो नहीं सकता

कि इन दोष दुर्गुणों के रहते कोई व्यक्ति सुखी जीवन व्यतीत कर सके ।

जैसे गन्ने के रस से नाना प्रकार की मिठाइयाँ बनती हैं, जैसे कपास से नाना प्रकार के वस्त्र बनते हैं वैसे ही इन दोष दुर्गुणों के परिपाक से नाना प्रकार की कठिनाइयाँ सामने आती हैं। बुरा प्रारब्ध भी बुरे कर्मों से, बुरे संस्कारों से बनता है। यदि किसी को सुख-शान्ति की अभिलाषा है तो वह तभी पूरी हो सकती है जब अपने विचार, स्वभाव उद्देश्य और कार्य-क्रम को सुधार ले । गायत्री साधना से सतोगुण की वृद्धि होने के कारण यह सुधार अपने आप होता है और अनेक प्रकार के दूषण, अनिष्ट, कौए और चमगादड़ों की तरह मन मन्दिर में से निकल-निकल कर भागते हैं। इस प्रकार मनोभूमि का संशोधन हो जाने से अन्तरात्मा में वैसे ही शान्ति स्थापित होती जैसे काँटा निकल जाने पर तत्क्षण दर्द बन्द होता है ।

दया
सेवा
संयम
स्फूर्ति
सत्य
शौर्य
प्रेम
ॐ भूर्भुवः स्वः
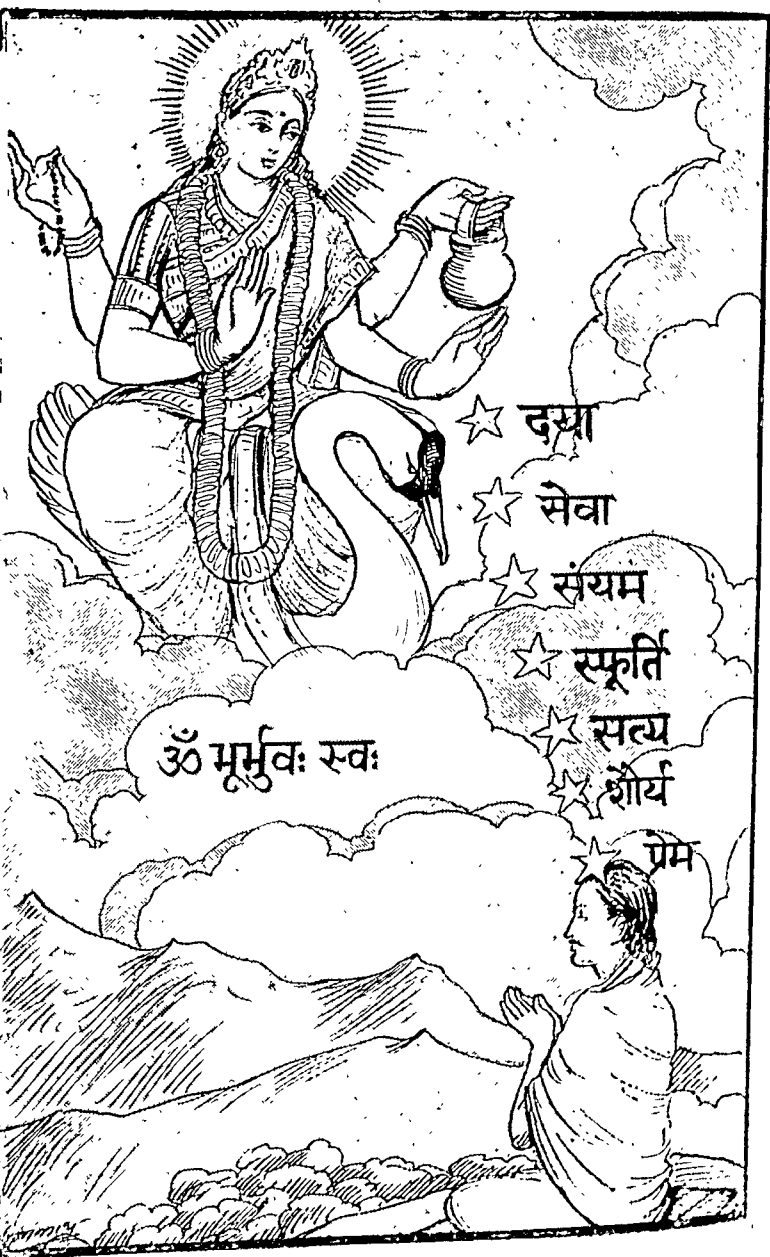
१०—सद्गुणों का वरदान

गायत्री माता का मनुष्य के शरीर में जब प्रवेश होता है तो वह सद्बुद्धि के रूप में होता है। साधक के विचार और स्वभाव में धीरे-धीरे सतोगुण बढ़ता है और उसमें सतोगुणी प्रवृत्तियों का विकास होता है। बुरे स्वभाव के मनुष्यों की बुराइयाँ क्रमशः घटने लगती हैं और जो अच्छाइयाँ उनमें पहले कभी दिखाई नहीं पड़ती थीं अब दृष्टि गोचर होती हैं।

दया, सेवा, संयम, स्फूर्ति, सत्य, शौर्य, प्रेम यह गुण उसमें दिन-दिन बढ़ते हैं। हृदय रूपी उपवन में यह वृक्ष जमते हैं और जब वे फल-फूलों से लदते हैं तो उनके कारण मनुष्य चारों ओर से मँहकने लगता है, सुन्दर मत्त भ्रमरों और कोकिलों के झुण्ड उसके पीछे फिरते हैं और फल लोभियों की भीड़ उसे घेरे रहती है। यह सात लाभ सप्त तीर्थों में स्नान करने के बराबर हैं। सूर्य के रथ में सात घोड़े जुते होते हैं आत्मा के रथ में उपर्युक्त सात सद्गुण ही श्वेत हैं। उनके जुत जाने से आत्म-कल्याण का मार्ग बहुत शीघ्र पूरा हो जाता है।

सद्गुणों से बढ़कर और कोई सम्पत्ति नहीं। जो व्यक्ति सचाई पर आरूढ़ है। अपनी पवित्रता के कारण सदा निर्भय रहता है और किसी बुराई के आगे सिर नहीं झुकाता, जिसके हृदय में दूसरों के लिए सच्चा प्रेम एवं आत्म भाव है, जो दूसरों के दुःख देख कर दया से द्रवित हो जाता है, सेवा जिसके जीवन

का लक्ष्य हैं, मन एवं इन्द्रियों पर जिसने संयम प्राप्त किया है तथा परिश्रम के लिये जिसकी नस नाड़ियों में सदा उत्साह रहता है, निराशा आलस्य जिसे छूने तक नहीं पाता ऐसा व्यक्ति मनुष्य होते हुए भी देवता के समान है।

लौकिक सम्पत्तियों से सांसारिक सुखों से दैवी सम्पत्तियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान् हैं। संसार के पदार्थों से जितना सुख मिलता है उसकी अपेक्षा इन आत्मिक गुणों से अनेकगुना आनन्द उपलब्ध हो सकता है। गीता में यों तो २६ दैवी सम्पदाऐं गिनाई गई हैं पर उनमें उपर्युक्त सात ही प्रधान हैं। गायत्री माता अपने भक्त को यह सात सम्पत्तियाँ प्रदान करती हैं। फलस्वरूप उसकी अन्तः भूमिका देव तुल्य हो जाती है और जो सुख देवता लोग सुरपुरी में प्राप्त करते हैं वह सुख साधक को मनुष्य जीवन में अपने सद्गुणों के कारण प्राप्त होता है। जिसके पास दैवी सम्पदाऐं हैं निश्चय ही वह संसार की समस्त सम्पत्ति का स्वामी होने की अपेक्षा अधिक धनी माना जायगा।
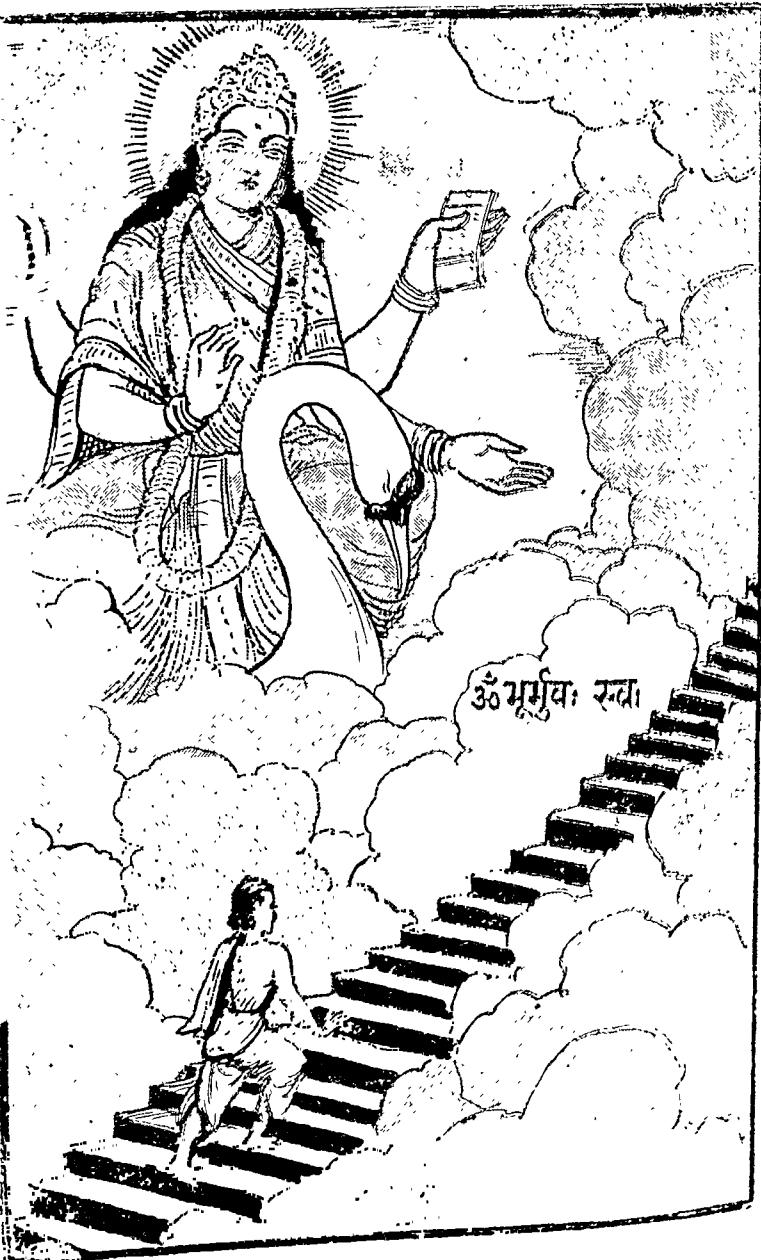
ॐ भूर्भुवः स्वः

११–उन्नति के पथ पर

जीव का स्वाभाविक धर्म ऊपर चढ़ना, उन्नति करना, आगे बढ़ना, विकसित होना है। इस आत्मिक क्षुधा के कारण ही मनुष्य विभिन्न दिशाओं में अपना विकास करता है। रोटी कपड़ा घर और आराम की मोटी व्यवस्थाऐं हो जाने से कोई व्यक्ति मजे में जीवित रह सकता है पर इतने मात्र से किसी को आत्म-सन्तोष नहीं हो सकता। जीवन की विभिन्न दिशाओं में उन्नति करने की हर मनुष्य को अभिलाषा होती है और उस आकांक्षा की पूर्ति, हुए बिना आन्तरिक शान्ति उपलब्ध नहीं होती।

उत्थान की अनेक सीढ़ियाँ हैं उन पर चढ़ता हुआ जीव आत्मोत्थान तक पहुँचता है। शारीरिक, आर्थिक,बौद्धिक, पारिवारिक, दाम्पत्तिक, उन्नति को करता हुआ मनुष्य यश, प्रतिष्ठा, आदर, नेतृत्व, एवं सुख सुविधा का अधिकारी बनता है। धार्मिक पारमार्थिक, आध्यात्मिक उन्नति की ओर बढ़ते हुए सतोगुण एवम् दिव्य तत्वों की प्राप्ति होती है। भौतिक और आत्मिक दोनों ही दिशाओं में मनुष्य जब बढ़ता है तभी उसकी उन्नति सर्वाङ्ग पूर्ण कही जाती है। सांसारिक योग्यताऐं एवं सामर्थ्य भी होनी चाहिए। समर्थ का ही त्याग कहा जाता है। जो अभाव ग्रस्त एवम् दीन-हीन है वह अपने को त्यागी नहीं कह सकता और न उसे त्याग का आनन्द मिल सकता है।

सांसारिक उन्नतियों की भाँति आत्मिक उन्नतियों की भी अनेक सीढ़ियां हैं। इस मार्ग में भी जैसे-जैसे ऊपर को चढ़ते जाते है वैसे अनेक दिव्य सम्पदायें उपलब्ध होती हैं। आत्मिक क्षेत्र की सम्पदाऐं इतनी अनूठी हैं कि उनकी तुलना में संसार का बड़े से बड़ा सुख एवं वैभव भी तुच्छ बैठता है। उस उन्नति पथ पर मनुष्य वहुधा अपने बल बूते बहुत ऊँचा नहीं चढ़ पाता, माता की सहायता से यह उत्कर्ष पथ की यात्रा सरल होती है। माता की कृपा, सहायता, एवम् प्रेरणा से साधक का उत्साह बढ़ता जाता है और रास्ते की कठिनाइयों से डरने की वजाय उन्हें परास्त करने का साहस पैदा हो जाता है।

चढ़ाई का मार्ग कठिन होता है। निश्चय ही उसमें काफी श्रम पड़ता है और बड़े साहस तथा धैर्य से काम लेना होता है। इन कठिनाइयों में अनेक साधक फिसल पड़ते हैं परन्तु माता जिसकी पीठ पर है उसे सफलता की दिशा में दिन-दिन अधिक प्रकाश प्राप्त होता चलता है और लक्ष्य की पूर्ति दूर नहीं रह जाती। वह सांसारिक और आत्मिक दोनों दिशाओं में अग्रसर होता है।

*****

१२—बन्धन से मुक्ति
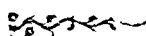
मनुष्य अनेक बन्धनों में बँधा हुआ है। जिस प्रकार जाल में जकड़ा हुआ पक्षी अपनी वर्तमान स्थिति में दुःखी होता है और उससे छुटकारा पाना चाहता है पर सफल मनोरथ नहीं हो पाता उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी परिस्थितियों से दुःखी रहता है, अपनी बुरी आदतों के दुष्परिणाम भुगतता है परन्तु उनसे छुटकारा नहीं मिलता। रास्ता ढूँढ़ता है पर मार्ग नहीं मिलता। जेलखाने में बन्द पड़े हुए कैदी की तरह उसके प्रयास विफल होते रहते हैं और मुक्ति का द्वार बन्द दिखाई पड़ता है।

यह बन्धन क्या है? कैसे है? जिसके द्वारा बाँधे गये हैं? इतना समझना भी बड़ा कठिन है। आत्म-ज्ञान का जब प्रकाश होता है तभी उनकी गाँठें दिखाई देती हैं। रामायण उत्तर कांड में ज्ञान दीप-वर्णन में गोस्वामी जी ने इन बन्धन ग्रन्थियों के खोलने का मार्ग बताया है। अपने कुसंस्कार, दूषित दृष्टिकोण, दुर्व्यसन, माया के प्रलोभन, अविद्या का अन्धकार, काम, क्रोध लोभ, मद. मोह का दुष्प्रभाव, दुर्भाव, कुकर्म आदि के कारण चित्त की मलीन दशा ही अधम जन्म और बन्धन का प्रधान कारण है।

प्राणी जिन जञ्जीरों से बँधा हुआ नारकीय बन्धन की यातनाएं सहता है वे जंजीर बड़ी कड़ी धातु की हैं आसानी से

नहीं टूटतीं। योगी, यती, साधु एवं तपस्वी भी फिसल पड़ते हैं और फिर उन्हीं प्रलोभनों के कुचक्र में फँस जाते हैं। इन्द्र और चन्द्रमा जैसे देवता, व्यास और विश्वामित्र जैसे ऋषि, जिन कुसंस्कारों में फिसल पड़े उनमें साधारण जीवों का मोहित रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

माता की कृपा का वरदान जब साधक अपनी तपस्या द्वारा प्राप्त करता है तो उसे दिव्य शक्ति की ऐसी सहायता प्राप्त होती है जिसके कारण अनेकों जंजीरें कट जाती हैं। कर्म-बंधन, भोग-बन्धन, संस्कार बन्धन, स्वभाव-बन्धन, मोह-बन्धन आदि जंजीरें माता की दिव्य शक्ति जब काटती है तो साधक को जीवन-मुक्त दशा का ब्रह्मानन्द सहज ही प्राप्त होने लगता है। आजीवन कैद से छूटने वाले कैदी तथा जाल में जकड़े हुए पक्षी को छुटकारा मिलने पर जो सुख होता है उससे अनेक गुना सुख भवबन्धन में असंख्य जन्मों से जकड़े हुए प्राणी को 'मुक्ति, पाकर उपलब्ध होता है। इस आनन्द को प्राप्त करने का मार्ग गायत्री माता की शरणागति ही है।

ॐ भूर्भुवः स्वः

१३--प्रारब्ध-परिवर्तन

प्रारब्ध बड़ी प्रबल होती है। ब्रह्मा ने जो विधान जिसके लिए लिख दिया है उसे हटाना या मिटाना किसी के वश की बात नहीं। पाण्डवों के श्री कृष्ण जैसे सहायक होते हुए भी उन्हें जीवन भर नाना प्रकार के दुःख उठाने पड़े। नल दमयन्ती, हरिश्चन्द्र शैव्या, दशरथ, विक्रमादित्य आदि महापुरुषों के सामने जो आपत्तियाँ आईं उनके प्रबल सहायक भी न हटा सके। इस कर्म रेखा की अमिटता को देखकर ही सूरदास ने कहा था—

करम गति टारी नाहिं टरै।
गुरु वशिष्ठ पण्डित बड़ ज्ञानी रचि पचि लगन धरै।
पिता मरण और हरण सिया को वन-वन विपति परै॥

पूर्व संचित कर्मों के कारण जो भला-बुरा प्रारब्ध बन जाता है, वह भुगतना ही पड़ता है। कोई कितना ही साधु, सत्पुरुष, सज्जन, शुभ कर्म करने वाला क्यों न हो उसके पूर्व कृत कर्म, प्रारब्ध रूप से जब सामने उपस्थित होंगे तो उसका परिणाम भुगतना ही होगा। वर्तमान पुण्य, तप, या शुभ कर्मों का प्रतिफल तो आगे चलकर, उनका परिपाक होने पर ही मिलेगा।

इतना होने पर भी माता की कृपा से कई कठिन प्रारब्धों में संशोधन हो जाता है। अत्यन्त दुस्तर और असह्य कष्टों की यातना हल्की होकर बड़ी सरल रीति से भुगत जाती है। कई बार घनघोर घटाऐं आकाश में उठती हैं उनमें बड़ी मात्रा में जल भरा होता है, वे बरसें तो मूसलाधार वर्षा करती है, पर यदि किसी प्रकार तीव्र वायु उसी समय चलने लगे तो वह जमी हुई घटा हट जाती है और थोड़ी बूँदा-बाँदी होकर बादल चले जाते हैं। मनुष्य के भाग्याकाश में भी इसी प्रकार कई बार बड़े दुस्तर प्रारब्ध होते हैं पर वे माता की कृपा से चिन्ह पूजा जैसा परिणाम दिखाकर इस प्रकार उतर जाते हैं कि पहले जितना भय दिखाई पड़ता था, वस्तुतः उसका एक अंश ही सामने आता है।

पूर्ण रूप से प्रारब्ध परिवर्तन तो असम्भव है पर माता की कृपा से इस में अनेक संशोधन और परिवर्तन हो सकते हैं। भविष्य के लिए उत्तम भाग्य-निर्माण हो सकता है। चित्र में गायत्री माता साधक के भाग्य पटल में आवश्यक हेर-फेर कर रही है, उसके पूर्व में निर्मित प्रारब्ध में कुछ परिवर्तन किया जा रहा है।

ॐ भूर्भुवः स्वः

१४—ऋद्धिसिद्धियों के प्रलोभन

आत्मा, परमात्मा का अंश है, मनुष्य ईश्वर का पुत्र है, उसमें वह सब शक्तियाँ और सम्भावनाऐं मौजूद हैं जो परमेश्वर में होती हैं। जब साधक गायत्री उपासना द्वारा अपने आन्तरिक मल विक्षेपों को शुद्ध कर लेता है तो उसकी अन्तःभूमि में दैवी शक्तियों का स्वयमेव प्रादुर्भाव होता है और अनेक ऐसी अलौकिक सामर्थ्य उसमें प्रकट होती हैं जो साधारण मनुष्यों में नहीं देखी जातीं।

इन अलौकिक सामर्थ्यों को पाकर कई अदूरदर्शी साधक साँसारिक प्रयोजनों में उनका प्रयोग करने लगते हैं। यश, प्रतिष्ठा, पूजा, महिमा पाने के लिए उन दिव्य शक्तियों का वे ऐसा प्रदर्शन करते हैं जिससे उन्हें चमत्कारी, सिद्ध पुरुष समझा जाता है और सांसारिक कामना वाले मनुष्यों की भीड़ उन्हें घेरे रहती हैं। उनकी पूजा, प्रतिष्ठा पाकर वे सिद्ध पुरुष अपना सन्तोष कर लेते हैं। इसी प्रकार अपने लाभ के लिए भी कई व्यक्ति अपनी आत्मिक सामर्थ्यों का दूसरे पर प्रयोग करते हैं और उनसे मनमर्जी का काम करा लेते हैं। कई सिद्ध पुरुष अपने तपोवल से दूसरों के प्रारब्ध बदल देते हैं। कुछ तान्त्रिक वाम-

मार्गी साधनाओं द्वारा अभिचार, घात, सम्मोहन, पिशाच-सिद्धि यक्षिणी साधन आदि में सफलता प्राप्त करते हैं और उनके द्वारा स्वार्थ साधन करते तथा अपना चमत्कार प्रकट करते हैं।

यह आत्मिक शक्तियों का दुरुपयोग है। आसुरी शक्ति आरम्भ में इन सिद्धियों का प्रलोभन देकर उसे नीचे गिराती है ताकि वह असुरता को छोड़कर देवत्व के पक्ष में न जावे। नाना प्रकार के प्रलोभन दिखाकर वे साधक को ललचाती हैं और उसे भोग, ऐश्वर्य, यश, तथा सांसारिक उलझनों में अपनी शक्ति को खर्च करने के लिए आकर्षित करती हैं। यदि साधक उस प्रलोभन में फँस जाय तो उसकी अत्यन्त श्रमपूर्वक उपार्जित की हुई आध्यात्मिक कमाई थोड़े ही दिन में समाप्त हो जाती है और वह छूँछ रह जाता है।

इस खतरे से साधक को गायत्री माता बचाती है। वह उसकी बुद्धि में ऐसी दृढ़ता देती है कि, इन ऋद्धि-सिद्धियों के प्रलोभन, आकर्षक और सौन्दर्य को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है और उनकी ओर से आँखें बन्द करके अपने लक्ष्य में तन्मय रहता है। तब वे आत्मिक शक्तियाँ उसकी लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में सहायक होकर उसे बहुत शीघ्र पूर्णता तक पहुँचा देती हैं।

ॐ भूर्भुवः स्वः

१५—काया-कष्टों से निवृत्ति

बीमारी और कमजोरी के कारण ही मनुष्य को नाना प्रकार के काया-कष्ट भुगतने पड़ते हैं। अस्वस्थता का मूल कारण आहार-विहार का असंयम है। अनियमित दिनचर्या, अनुपयुक्त खाद्य पदार्थ, आलस्य, अति परिश्रम, इन्द्रियों का असंयम, चिंता, अस्वस्थता, तथा मनोविकारों के कारण अनेक बीमारियाँ पैदा होती हैं! पैतृक, जन्मजात तथा प्रारब्ध रोगों को छोड़कर शेष बीमारियों से मनुष्य यदि चाहे तो बचा रह सकता है। अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूक और कर्तव्य-निष्ठ रह कर दीर्घ जीवन तथा आरोग्य आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। जब गरीब लोग, अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहकर भी हट्टे-कट्टे रह सकते हैं, तो कोई कारण नहीं कि सुविधाजनक स्थिति वाले नीरोग न रह सकें।

प्रकृति के नियमों को तोड़ कर अप्राकृतिक जीवन-क्रम अपनाने से शरीर की जीवनी शक्ति घटती जाती है। कमजोरी थकान, दुर्बलता और उदासी घेरे रहती है। थोड़ा-सा भी दवाव पड़ने पर शरीर बिखर जाता है और किसी न किसी बीमारी से ग्रसित होकर चारपाई को पकड़ लेता है। बीमारी में अपने

कायाकष्ट के अतिरिक्त, अर्थ-हानि, चिन्ता, घर वालों को परेशानी तथा अशोभनीय परिस्थितियों की उत्पत्ति होती है। दूसरों का भी रोग की छूत लगने का अन्देशा रहता है। कमजोर आदमी भी एक प्रकार का बीमार ही है। रोग शय्या पर भले ही वह न पड़े पर कोई उत्पादक, उत्साहवर्धक पुरुषार्थ, उन्नति या कमाई का आयोजन उसके द्वारा नहीं हो सकता।

इस विपन्न दशा से मनुष्य सहज ही बच सकता है यदि वह अप्राकृतिक एवं असंयत आहार-विहार से बचा रहे। यह बचाव तभी संभव है जब विचार, स्वभाव एवं कार्य-क्रम में सतोगुण की समुचित मात्रा हो। गायत्री उपासना के फलस्वरूप साधक में स्वभावत: सतोगुण की वृद्धि होती है और उसके स्वभाव में असंयम के लिए स्थान नहीं रहता, अतएव बीमारी और कमजोरी से भी उसे छुटकारा मिल जाता है। जो बीमारियाँ बहुत दिनों से शरीर में प्रवेश किये हुए थीं, बहुत दवादारू कराने पर भी ठीक नहीं हो रही थीं वे गायत्री उपासना से अपने आप ठीक होती देखी गई हैं। असाध्य रोगी, मृत्यु के मुँह में से वापिस लौटते देखे गये हैं। साधना द्वारा शरीर में सतोगुण की वृद्धि करना एक ऐसी रामबाण औषधि है जिसके समान सारे चिकित्साशास्त्र में अन्य कोई वस्तु नहीं मिल सकती।

* * *

ॐ भूर्भुवः स्वः

१६--सद्बुद्धिदायिनी सरस्वती

आद्यशक्ति महामहिमामयी गायत्री के तीन रूप हैं-ह्रीं, श्रीं, क्लीं। ह्रीं कहते हैं—सरस्वती को, श्रीं कहते हैं—लक्ष्मी को, क्लीं कहते हैं—काली को। सबसे प्रथम और सबसे प्रधान ह्रीं है। सरस्वती के रूप में साधक के मन में सद्बुद्धि रूपी वीणापाणि भगवती का प्रवेश होता है। हंस जैसा नीर-क्षीर विवेक करने वाली दूरदर्शिता, अन्तःकरण को सदाशयता से झंकृत कर देने वाली झंकार, यह दो उपहार साधक को प्रारम्भिक प्रसाद की तरह प्राप्त होते हैं!

बुद्धि का शुद्ध होना और सद्बुद्धि प्राप्त होना यह दोनों ही उपहार माता अपने भक्त को देती है। बुद्धि में जो प्रलीनता, चंचलता, अव्यवस्था भरी रहती है उसके कारण मस्तिष्क निर्बल होता है और स्मरणशक्ति की कमी, तीक्ष्ण चेतना का अभाव, मोटी अक्ल, देर में समझ आना, अधिक समय तक कोई बात याद न रहना, बौद्धिक काम करने से मस्तिष्क का थक जाना आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके कारण कई कार्य ऐसे हैं जिनमें सफलता का मार्ग रुक जाता है। इन दोषों के कारण विद्यार्थी फिसड्डी रहते हैं, परीक्षा में फेल हो जाते हैं। वकील, डाक्टर, वक्ता, लेखक, मुनीम, कारीगर अपने-अपने कामों में

अनेकों भूल करते हैं। जिससे उनकी कीर्ति और अजीवि दोनों में ही कमी आ जाती है अथवा विकास रुक जाता है।

गायत्री बुद्धि का मन्त्र है। उसमें 'धी' तत्व की उपासन प्रधान है। इस महा मन्त्र से बुद्धि की मलीनता दूर होती और मस्तिष्क से काम करने वाले लोगों की सफलता का मा खुल जाता है। गायत्री उपासना करने वाले विद्यार्थी अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते हैं। तथा अन्य बुद्धिजीवी लोगों की मनो· दशा में सबलता आ जाने के कारण उनका कार्य उन्नति करता हुआ देखा गया है। मस्तिष्क में बल आने से अनेकों मानसिक रोगों को अपने आप अच्छा होते देखा गया है। शिर दर्द, आधा शीशी, पागलपन, भूतोन्माद, विक्षिप्तता, सनक, दुःस्वप्न, डर लगना, मृगी, मूर्छा आदि में गायत्री उपासना से आशाजनक लाभ होता है।

सद्बुद्धि का सम्बन्ध सद्गुणों से है। व्यवस्थित कार्यक्रम, सुलझे हुए विचार, स्थिर मति, दूरदर्शिता, प्रतिष्ठित व्यवहार, शान्त चित्त, संतुलित विवेक, सूक्ष्म समझ यह सब बातें सद्बुद्धि के कारण प्राप्त होती हैं। सद्बुद्धि और शुद्ध-बुद्धि के प्रतीक सद्ग्रन्थों की चित्त में वर्षा होती हुई दिखाई देती है। गायत्री उपासना के फल स्वरूप माता का यह उपहार उसके प्रिय बालकों को अवश्य प्राप्त होता है।
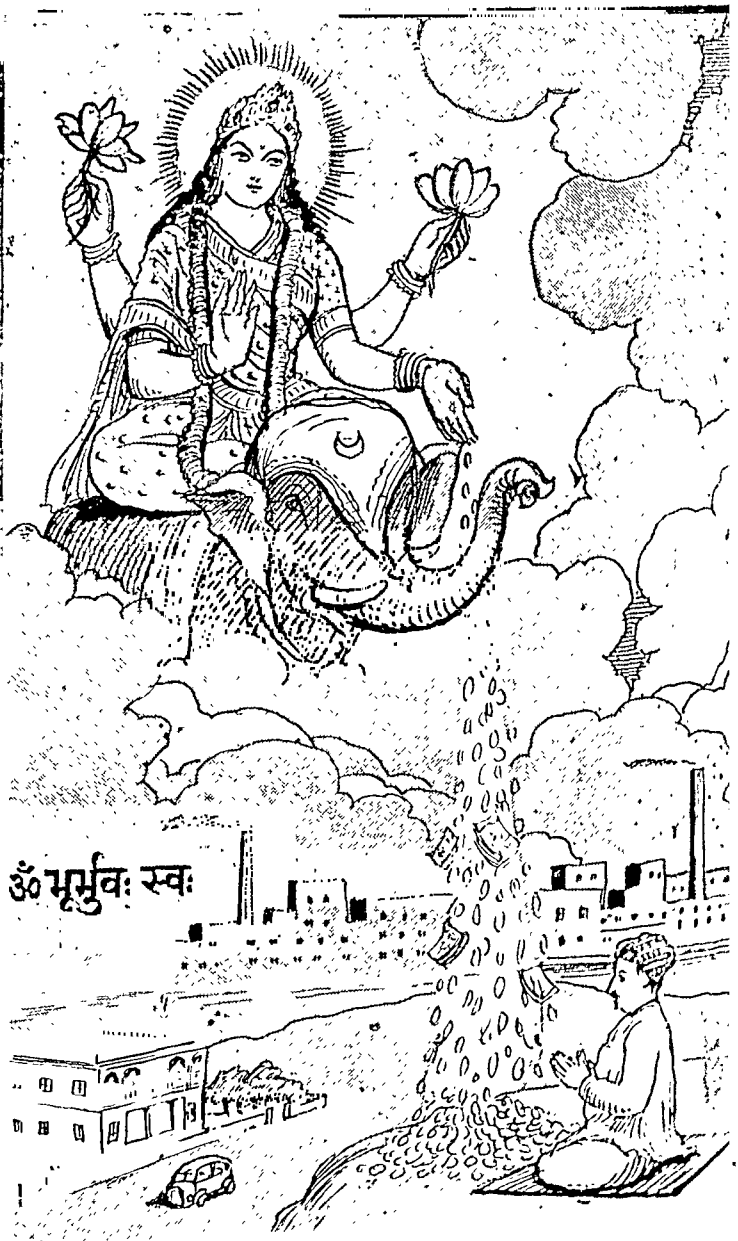
ॐ भूर्भुवः स्वः

१७—ऐश्वर्य वर्द्धिनी-लक्ष्मी

संसार में जीवन यापन करने के लिए कुछ वस्तुओं की ावश्यकता होती है। जिन वस्तुओं के बिना हमारा काम ाहीं चलता या जिनके न होने से जीवन रक्षा में बाधा पहुँचती ; उन्हें सम्पत्ति या लक्ष्मी कहते हैं। अन्न, वस्त्र, मकान, पुस्तक, वा आदि की आवश्यकतायें ऐसी हैं जिनके न होने पर जीवन ारण करने में कठिनाई होती है। इन्हीं सब आवश्यक वस्तुओं को रुपये के रूप में सुरक्षित रख लिया जाता है। रुपये के बदले में यह वस्तुऐं चाहे जब प्राप्त करली जाती हैं। यही धन संचय का उद्देश्य है।

परिश्रम, मानसिक योग्यता, साधन, पूँजी, सहयोग और परिस्थिति पर धन का उपार्जन अवलम्बित है। इनमें से कुछ बातें तो मनुष्य अपने-अपने प्रयत्न और पुरुषार्थ से जमा सकते हैं पर कुछ ऐसी हैं जो मनुष्य के हाथ में नहीं होतीं। प्रयत्न करने मात्र से उन्हें उपलब्ध नहीं किया जा सकता। कई ऐसे अवसर आते हैं कि बिना प्रयत्न या स्वल्प प्रयत्न से बहुत लाभ होता है और कई बार अत्यन्त बुद्धिमत्ता और परिश्रम के साथ किया हुआ आयोजन भी निष्फल चला जाता है। इसमें कोई दैवी विधान भी छिपा रहता है। धनी को निर्धन और निर्धन

को धनी होने की घटनाऐं आये दिन घटित होती रहती है। इनमें भी कोई रहस्यमय तथ्य छिपा होता है।

गायत्री की 'श्रीं' शक्ति लक्ष्मी है। लक्ष्मी के द्वारा ऐश्वर्य वैभव, सम्पत्ति और धन प्राप्त होता है। यह धन ईश्वर की अमानत है जिसका उपयोग अपने भोग, अहङ्कार या संचय में नहीं वरन् मनुष्यता के विकास के लिए है। यदि मनुष्य उसे स्वार्थ के लिए ही दवा बैठता है तो उससे वह सम्पत्ति छीन ली जाती है। गायत्री के उपासक में यह बुद्धि होती है कि धन का उपयोग किस कार्य में करूँ और वह मुझे क्यों दिया गया है। यह बुद्धि होने के कारण वह सदुपयोग करके थोड़े धन से भी ऐसा लाभ उठा लेता है, जो बड़े-बड़े करोड़पतियों को भी प्राप्त नहीं होता।

अमीर वह नहीं है जिसके पास मील, मोटर, जायदाद तथा तिजोरी भरे नोट हैं। वरन् वह है जो ईमानदारी से कमाता है और उसी से सन्तुष्ट रहता है। गायत्री उपासकों को कभी पैसे की कमी नहीं पड़ती, उनकी उचित आवश्यकतायें रुकी नहीं रहतीं, उन्हें अपने थोड़े धन में भी कुवेर के समान सन्तोष होता है। कई बार गायत्री उपासना से विपुल मात्रा में धन वृद्धि होती देखी गई है, पर साथ ही सदुपयोग वुद्धि भी अवश्य बढ़ती है जिससे उसका धन भी धन्य बन जाता है। गायत्री उपासक भूखा नङ्गा कहीं भी नहीं देखा गया है।

ॐ भूर्भुवः स्वः

१८—महाशत्रुओं से संरक्षण

शत्रुओं की कमी नहीं। हमारे भीतर और बाहर अगणित शत्रुओं की सेना फैली हुई है, जो इसी घात में रहती है, कब अवसर पावे और कब आक्रमण करे। सजग रहते हुए भी कई बार ऐसे अवसर आते हैं, जब थोड़ी-सी भूल हो जाय और उस मोके को ताक कर शत्रुओं की सेना अपना आक्रमण कर दे।

मनोविकार हमारे सबसे बड़े शत्रु हैं। थोड़ा-सा प्रलोभन, आकर्षण: अवसर, सहयोग पाकर वे प्रबल हो उठते हैं और ऐसे कृत्य करा डालते हैं, जिस पर पीछे बड़ा पश्चात्ताप होता है और हानि उठानी पड़ती है। रोग, शोक, मृत्यु, अकाल, आपत्ति, हानि, विरोध, दारिद्रय, संघर्ष आदि के ऐसे आकस्मिक अज्ञात संकट सामने आ जाते हैं, जिन्हें प्रारब्ध शत्रु ही कह सकते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मनुष्य भी शत्रु होते हैं। जिनसे किसी कारणवश द्वेष या मनोमालिन्य हो जाता है, वे शत्रुता और प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर सदा हानि पहुँचाने का ही प्रयत्न करते रहते हैं।

शत्रुओं से अनेक हानियाँ हैं, वे हमारी शक्तियों को आत्म-रक्षा की चिन्ता में अटकाये रहते हैं। उन्नति के लिए

जिस समय शक्ति और पुरुषार्थ को लगाया जाना चाहिए था वह शत्रुओं की रोक-थाम में ही लगती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी उनका ऐसा आक्रमण भी हो जाता है जिसकी चोट अपने को तिलमिला देती है और उसका आघात बहुत समय दर्द करता रहता है। शत्रुओं से रहित व्यक्ति वस्तुतः बड़ा सौभाग्यशाली है। ऐसे भाग्यवान् को "अजात शत्रु" कहते हैं।

गायत्री का 'क्लीं' रूप संहारक है। उसे दुर्गा, काली चण्डी आदि नामों से भी सम्बोधन किया जाता है। भक्त की रक्षा के लिए माता अपना यही रौद्र रूप में ग्रहण करती है और सिंह के समान विपुल पराक्रम के साथ त्रिशूल लेकर उन शत्रुओं के समान विपुल पराक्रम के साथ त्रिशूल लेकर उन शत्रुओं का संहार करती है, जो भक्त को अनुचित रूप से त्रास देते हैं। दुष्टों की शक्ति चाहे जितनी ही बढ़ी-चढ़ी हो, उनकी भयङ्करता चाहे कितनी ही विकराल लगती हो पर माता की शक्ति का प्रतिरोध उनसे नहीं हो सकता। रावण, कंस, हिरण्यकशिपु, भस्मासुर, दुर्योधन आदि दुष्टों को जो शक्ति नष्ट कर सकती है, उसके लिए कोई दुष्ट ऐसा नहीं जो परास्त न हो। द्वेष के स्थान पर प्रेम, कलह के स्थान पर शान्ति, संघर्ष के स्थान पर सहयोग उत्पन्न कर देना माता की एक कृपा कण से ही सम्भव हो जाता है।

ॐ भूर्भुवः स्वः

१६—अदृश्य सहायता

मनुष्य जितनी उन्नति करता है या सुख सौभाग्य प्राप्त करता है वह केवल अपने शरीर से ही नहीं कर लेता, उसे बाहरी सहयोग और सहायता की भी आवश्यकता पड़ती है। जिसे जितनी बाह्य सहायता उपलब्ध होती है वह उतनी ही जल्दी ऊपर उठता जाता है। अकेले आदमी की शक्ति बड़ी सीमित होती है, जब उसे अनेकों की अनेक प्रकार से सहायतायें उपलब्ध होती हैं तभी वह सफलता की मंजिल पार कर पाता है।

कुछ सहायतायें प्रत्यक्ष होती हैं कुछ अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष सहायताओं की जानकारी रहती है, उसे सहायता करने वाले के उपकार का मूल्य और वजन सब जानते हैं क्योंकि आँखों से उसे प्रत्यक्ष देखा गया है। अप्रत्यक्ष सहायतायें ऐसी होती हैं जो आँखों से स्पष्ट दिखाई नहीं पड़तीं, वे सीधी आकाश से आँगन में भी नहां गिरतीं वरन् किसी मध्यस्थ द्वारा या किसी वहाने प्राप्त होती हैं। हम इनके मूल्य, और वजन को भले ही न समझें पर उनका महत्त्व असाधारण है। दैवी सहायता मिलना जब बन्द हो जाता है तब बहुधा ऐसा कहा जाता है कि अब हमारा भाग्य सहायता नहीं देता और प्रवल पुरुषार्थ भी निरर्थक जा रहा है।

जव दैवी सहायता प्राप्त होती है तब ऐसे विचित्र सुग्रव-सर प्राप्त होते हैं कि अपने प्रयत्न का उस सुअवसर से विशेष सम्बन्ध नहीं दीखता। जब उसी परिस्थिति के, उसी योग्यता के उसी स्थान के अनेक व्यक्ति जहाँ के तहाँ हीन अवस्था में पड़े रह जाते हैं तब तक एक मनुष्य विशेष रूप से ऐसी सफलता का अवसर, लाभ या सौभाग्य प्राप्त करता है जिसके लिए अनेकों तरसते हैं, तो वह लाभ दैवी सहायता के कारण ही समझा जाना चाहिए। जब दैव कुपित होता है तो मुट्ठी का सोना मिट्टी हो जाता है और दैव की अनुकूलता से मिट्टी, धूल से सोना होने की उक्ति चरितार्थ होती है।

प्रारब्ध, भाग्य, विधि का विधान, ईश्वर इच्छा या दैवी सहायता, हमारे भले बुरे कर्मों से सम्बन्धित है। गायत्री तप की गर्मी से पुराने कच्चे सुकृत शीघ्र पक जाते हैं, और जो लाभ बहुत काल पश्चात् मिलना चाहिये था वह शीघ्र मिल जाता है। तप की अग्नि में अनेक पाप और दुर्भाग्य जल भी जाते हैं। देखा जाता है कि गायत्री का आश्रय लेकर आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर होने वाले साधक को अनेक बार ऐसी आकस्मिक सहायतायें मिलती हैं मानो माता ने ही आन्तरिक लोक से वह सब साधन सुविधायें भेजी हों।

ॐ भूर्भुवः स्वः

२०-सन्तुष्ट दाम्पति जीवन

सांसारिक जीवन में शरीर रक्षा के लिए अन्न वस्त्र आदि आवश्यकताओं के उपरान्त सबसे बड़ी भूख और आवश्यकता 'सन्तुष्ट दाम्पत्य जीवन की है। जिसे इस क्षेत्र में अभाव, शुद्धि विकृति एवं असन्तोष होगा वह अन्य सब प्रकार के भौतिक सुख साधनों से सम्पन्न होते हुए भी सन्तुष्ट न रह सकेगा।

सन्त, महात्मा, त्यागी, योगी एवम् ब्रह्मचारी लोग बहुधा नारी से दूर रहने और उससे घृणा करने के सिद्धान्त का प्रतिशादन करते हैं। यह प्रतिपादन निम्न कोटि की मादक, उत्तेजक विषय वासना के विरुद्ध है। रमणी और कमनी का विषास्त रूप ही निन्दनीय माना गया है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी रूपों में नारी परम आदरणीय, श्रद्धास्पद, पूजनीय है। उसमें स्वभावतः पुरुष की अपेक्षा देव-तत्व अधिक होता है। माता, बहिन, बेटी और धर्म-पत्नी के रूप में उसकी महिमा का जितना गान भारतीय ऋषियों ने किया है उतना सम्मान और किसी ने नहीं किया। नारी अर्धांगिनी है, उसके बिना पुरुष अधूरा है। हमारे सभी देवता सपत्नीक थे और अधिकांश ऋषि-मुनि अपनी धर्मपत्नियों समेत तपस्या करते थे। नारी की उपयोगिता, सेवा, सहायता की आवश्यकता पुरुष को है और पुरुष की नारी को।

गृहस्थ भी माता की कृपा एवँ सफलता का उतना ही अधिकारी है, जितना विरक्त।

गायत्री माता की छत्रछाया प्राप्त करने वाले साधकों का दाम्पत्य जीवन अतीव सुमधुर होता है। कुमारियाँ यदि उपासना करें तो उन्हें उत्तम वर तथा अनुकूल घर मिलता है कुमारों को सेवा-भावी मनोवांछित पत्नी की प्राप्ति होती है। विवाहित पति-पत्नी में यदि पारस्परिक मनोमालिन्य, रुचि-प्रतिकूलता, तथा कलह के कारण विद्यमान हों तो उनका समाधान होता है। दाम्पत्य-जीवन में कलह उत्पन्न करने वाले अनेक कारण होते हैं, शरीर, मन, स्वभाव, कार्य एवं विचारों में कुछ ऐसी प्रतिकूलता रहती है जिसके कारण दोनों में एकता, सरसता एवं स्नेहशीलता उत्पन्न नहीं हो पाती। ऐसे असन्तुष्ट जीवनों में माता की कृपा की वर्षा होने से ऐसे परिवर्तन होते हैं जिससे प्रतिकूलताऐं अनुकूलता बन जाती हैं और सद्बुद्धि बढ़ने के कारण कलह के बीज अपने आप नष्ट हो जाते हैं।

गायत्री माता का आशीर्वाद साधक को सुखी और सरस दाम्पत्य-जीवन के रूप में प्राप्त होता है। दोनों एक ही तरह आत्मीयता के बन्धन में बँधकर जीवन को धार्मिक आधार पर व्यतीत करते हैं।
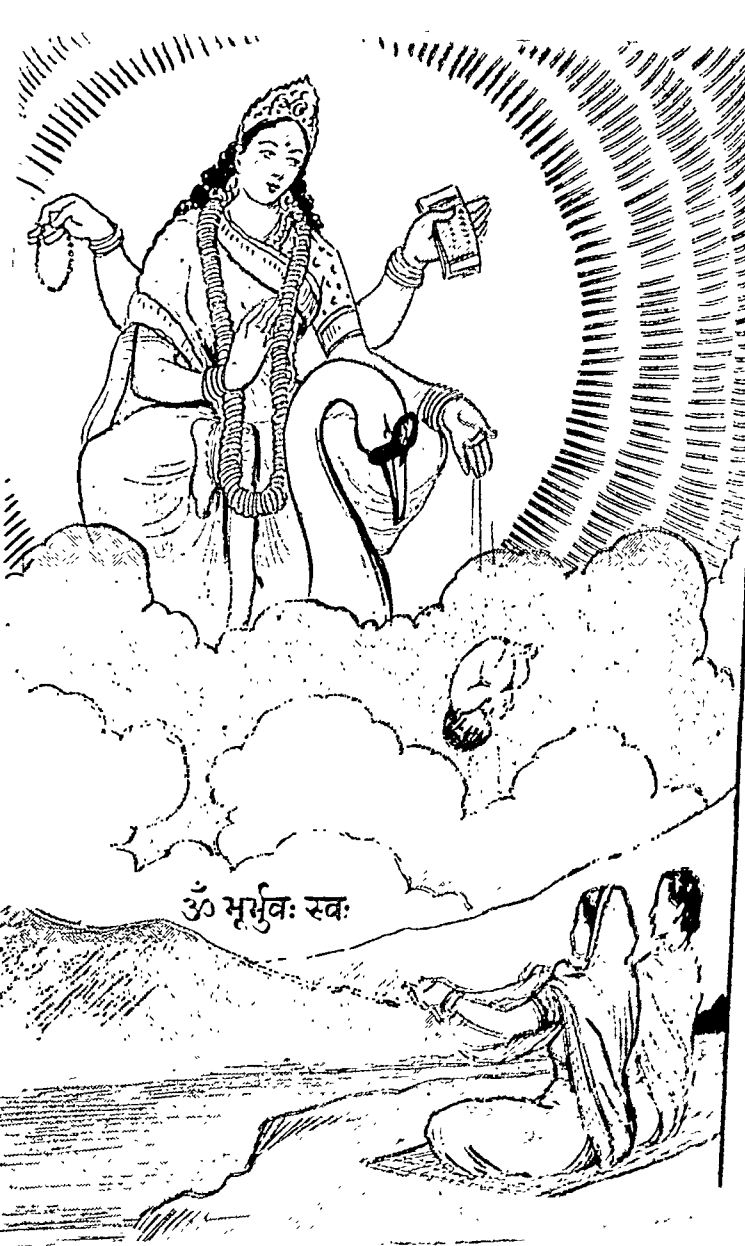
ॐ भूर्भुवः स्वः

२१—सुसन्तति का सौभाग्य

घर की शोभा, आँगन का सौंदर्य, बालकों पर निर्भर रहता है। जिसके घर में हँसते-खेलते बालक हैं उस घर में उत्साह और प्रसन्नता हर घड़ी नाचती रहती है। घर वालों का समय कट जाता है और बुरी परिस्थितियाँ भी बालकों के बीच हँसते-खेलते व्यतीत हो जाती हैं। बच्चों की चिन्ता में मनुष्य उत्साह पूर्वक अधिक काम करने के लिये प्रेरित होता है। फिजूल-खर्ची हरामखोरी, आवरागर्दी आदि अनेकों बुराइयों से बच जाता है। बाल बच्चेदार स्त्री-पुरुषों के चारित्रिक पतन होने की बहुत कम संभावना रहती।

यद्यपि आज के युग में अत्यधिक बढ़ी हुई जन-संख्या को देखते हुए जितने बालक कम हों उतना ही अच्छा है, जिसे सन्तान न हो उसे,इसे भी माता की विशेष कृपा समझ कर अपना शिशुपालन वाला समय लोक-सेवा और आत्म साधना में लगाना चाहिए। पर यदि सन्तान हो भी तो वह ऐसी होनी चाहिए जो कुल को उज्ज्वल करने वाली, और माता-पिता के यश को बढ़ाने वाली हो।

वासना से प्रेरित होकर किया हुआ गर्भाधान वैसा ही फल उत्पन्न करता है जैसा कि पति-पत्नी का उद्‌देश्य होता है,

ऐसे बालक स्वार्थ और वासना की निकृष्ट भावनाओं से भरे होते हैं, वे छोटेपन से ही अवज्ञाकारी और दुर्गुण होते हैं, और बड़े होने पर माता-पिता को अपमान, शोषण, कष्ट एवं अपयश ही देते हैं। ऐसी सन्तान पर माता-पिता ने जो त्याग किया था उसका स्मरण करके उन्हें अपने श्रम की निस्सारता, निरर्थकता और असफलता पर भारी खेद होता है। तब वे कहते हैं कि कुपात्र सन्तान होने से संतान रहित रहना हजार गुना अच्छा

ऐसी विषम स्थिति में गायत्री उपासक को नहीं पड़ पड़ता। उनके विचार उच्च कोटि के होने से सन्तान भी वै ही मनोभूमि लेकर आती है। द्रौपदी और अर्जुन की शिक्षा गर्भ में ही सीख कर जैसे अभिमन्यु पैदा हुआ था, वैसे ह गायत्री-साधक,सतोगुणी माता-पिता के संस्कार लेकर जो बाल उत्पन्न होते हैं, वह बड़े होने पर ऐसे बनते हैं जिनके गुण, कर्म स्वभाव, पराक्रम एवं प्रतिष्ठा को देखकर माता-पिता को सन्तो होता है और वे अपने श्रम को सफल हुआ समझते हैं। ऐसी सन्तान ही अपने माता-पिता को सुख सन्तोष देती है और उनके यश को बढ़ाती और सेवा करती है। बिगड़ी हुई सन्तान का सुधार, उसकी बुद्धि में हेर-फेर, शुभ संस्कारों की स्थापना,आदि कार्यों के लिए गायत्री उपासना बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है।
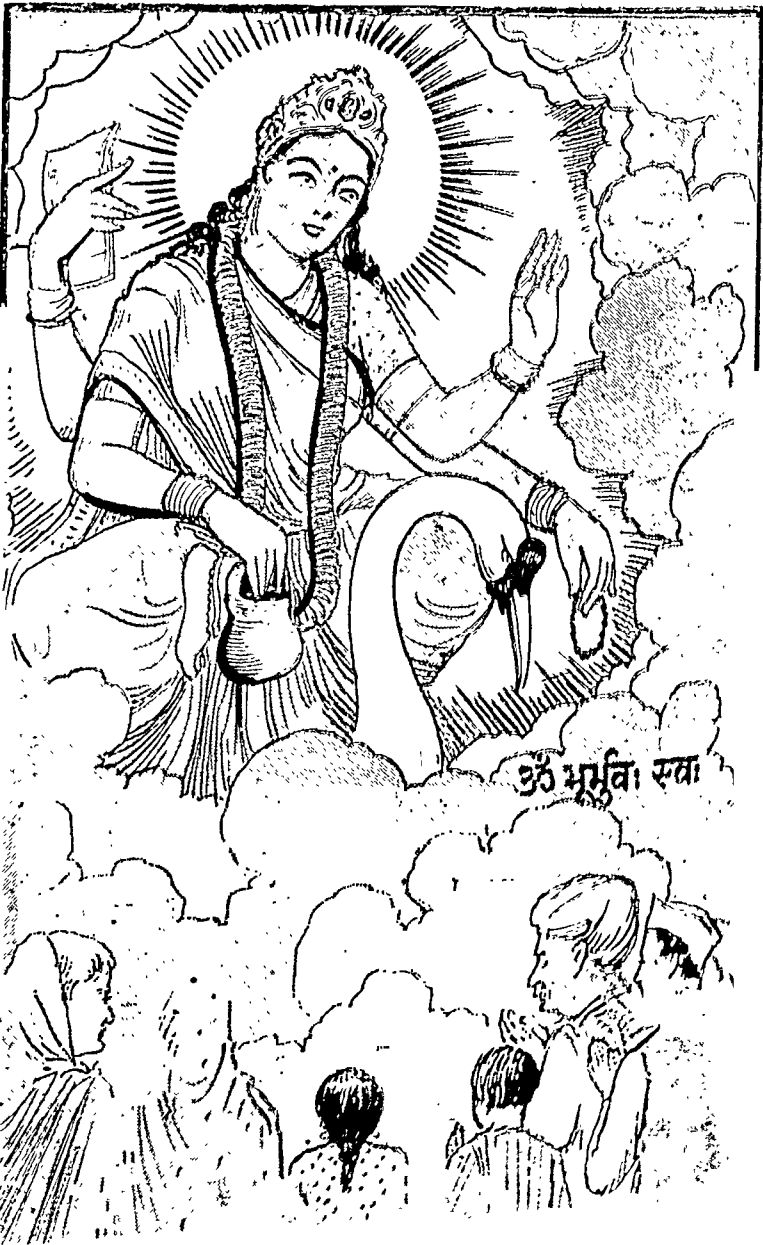
ॐ भूर्भुवः स्वः

२२–पारिवारिक सुख-शान्ति

जब परिवार के सब लोग प्रेम पूर्वक, एक दूसरे की हमदर्दी, सेवा और सहायता करते रहते हैं, एक दूसरे का उचित आदर करते हुए त्याग और उदारता का व्यवहार करते हैं तो घर में स्वर्गीय शान्ति विराजती है। सब के सहयोग से घर की आर्थिक स्थिति सुधरती है, उत्पादन बढ़ता है और कम खर्च में सारी व्यवस्था हो जाती है। ऐसे कुटुम्ब जिनमें पारस्परिक प्रेम और मतैक्य होता है, बुरे दिन को भी हँसते-खेलते काट लेते हैं। उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और किसी को उन पर आक्रमण करने का साहस नहीं होता। कोई दुस्साहस करता भी है तो उसे उस संगठित कुटुम्ब के सामने मुँह की खानी पड़ती है।

जिन परिवारों में आपसी ईर्ष्या, द्वेष, तिरस्कार, मनोमालिन्य, एवं विरोध के भाव रहते हैं, जहाँ लड़ाई-झगड़ा, कलह, चोरी, दुराव के दृश्य दिखाई देते हैं, बड़ा छोटों को दबाता है और छोटा बड़ों की इज्जत नहीं करता, चोरी और अपना-अपना स्वार्थ साधन करने की नीति पर जहाँ सब लोग चलते हैं, सामूहिक लाभ और गृह-व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं देते वह परिवार जल्दी ही नष्ट हो जाता है। उसकी प्रतिष्ठा धूलि में मिल जाती है, अच्छी आमदनी होने पर भी पूरा नहीं

पड़ता, बाहर के लोग उन पर हँसते हैं। चुगलखोर और स्वार्थी लोग ऐसे ही परिवारों में विरोध डाल कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। स्वार्थ द्वेष और ईर्ष्या के कारण वे शीघ्र ही एक दूसरे से अलग हो जाते हैं और बुहारी में से बिखरी हुई सींकों की तरह तथा माला में से टूटे हुए मोतियों की भाँति उस परिवार के सदस्य दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

पारिवारिक अशान्ति का मुख्य कारण लोगों की कुबुद्धि है। अन्य कारणों को तो आसानी से सुलझाया जा सकता है पर कुबुद्धि रूपी पिशाचिनी ऐसी प्रचण्ड है कि यह छुड़ाये नहीं छूटती। जिसके पीछे यह दुष्टा लग जाती है उसे चैन नहीं लेने देती और उसके समीप रहने वाले सम्बन्धित लोग भी त्रास पाते हैं। घर में एक-दो आदमी भी दुर्बुद्धि के हों तो शेष शान्ति प्रिय लोगों को भी चैन से नहीं बैठने देते और अकारण सब को दुःखी होना पड़ता है।

गायत्री उपासना करने वालों की बुद्धि शुद्ध होती है। जिस घर में गायत्री की पूजा, उपासना, यज्ञ, स्वाध्याय, जप तप, आदि का आयोजन होता रहता है वहाँ सद्बुद्धि का स्वाभाविक प्रकाश होता है और उस परिवार में विघटनकारी तत्व एवं दुर्गुण अपने आप कम होते जाते हैं। ऐसे धार्मिक परिवारों में सदा सब प्रकार की शान्ति विराजती देखी जाती है।

ॐ भूर्भुवः स्वः

२३—परम प्रिय पुत्रियाँ

पिता को पुत्र और माता को पुत्रियाँ अधिक प्यारी होती हैं। नारी हृदय को जितनी अच्छी तरह नारी समझती है उतना नर नहीं समझता। गायत्री माता को अपनी पुत्रियाँ परम प्रिय हैं। उनकी स्वल्प साधना का भी परम करुणामयी माता पर विशेष प्रभाव होता है। स्त्रियों में स्वभावतः कोमलता, सात्विकता और भक्ति-भावना का अंश अधिक होता है, इसलिए वे माता की कृपा और भी शीघ्र प्राप्त कर सकती हैं।

पुरुषों की ही भाँति स्त्रियों को भी गायत्री साधना का अधिकार है। माता के लिए पुत्र और पुत्री दोनों ही प्रिय हैं; दोनों ही उनकी आँखों के तारे हैं। वे दोनों को ही समान प्रेम से अपनी गोदी में बिठाती हैं। आत्मा न स्त्री है न पुरुष, वह विशुद्ध ब्रह्म-ज्योति की चिनगारी है। आत्मा को परमात्मा में मिलाने वाली गायत्री रूपी सीढ़ी पर चढ़ने का पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी अधिकार है।

प्राचीन काल में अनेक महिलाऐं गायत्री उपासना द्वारा परम सिद्धावस्था को प्राप्त हुई थीं। अब भी अनेकों महिलाऐं माता की उपासना करके आत्मोन्नति, सांसारिक सुख समृद्धि

की प्राप्ति एवं अनेक आपत्तियों से छुटकारा पाने की प्रसन्नता अनुभव कर रही हैं। विधवा बहिनों के लिए तो गायत्री साधना एक सर्वोत्तम तपश्चर्या है। इससे उनके मनोविकार शान्त होते हैं। शोक-वियोग की जलन बुझाती है और बुद्धि में सात्विकता आने से सतीसाध्वी जैसा ईश्वर परायण जीवन बनना सुगम हो जाता है।

गायत्री उपासना करने वाली देवियों का जीवन बड़ा सुख-शान्तिमय बनता है। उत्तम स्वास्थ्य, मुख पर तेज, सन्तान की सुख-शान्ति, अविचल सुहाग, बुरे स्वभाव का सुधार, कुमारियों को उत्तम घर-वर की सम्भावना, दरिद्रता का निवारण, पति और पितृ कुलों का मङ्गल, प्रतिष्ठा वृद्धि, पति का प्रेम, ग्रह-दशा, भूत-बाधा आदि उलझनों का निवारण आदि अनेकों लाभ मिलते हैं,सांसारिक कठिनाइयाँ दूर होती हैं। इसके अतिरिक्त उनकी आत्मिक प्रगति होती चलती है, जिससे परलोक में दिव्य सुख, आगामी जन्म में राजसी वैभव तथा स्वर्ग एवं जीवन्मुक्ति का द्वार खुलता है।

कुमारियाँ, सधवाऐं, विधवाऐं, वृद्धाऐं सभी श्रेणी की स्त्रियाँ गायत्री माता की पूजा उपासना करके स्वयं सुखी बन सकती हैं और अपने परिवार को सुखी बना सकती हैं।

———

ॐ भूर्भुवः स्वः
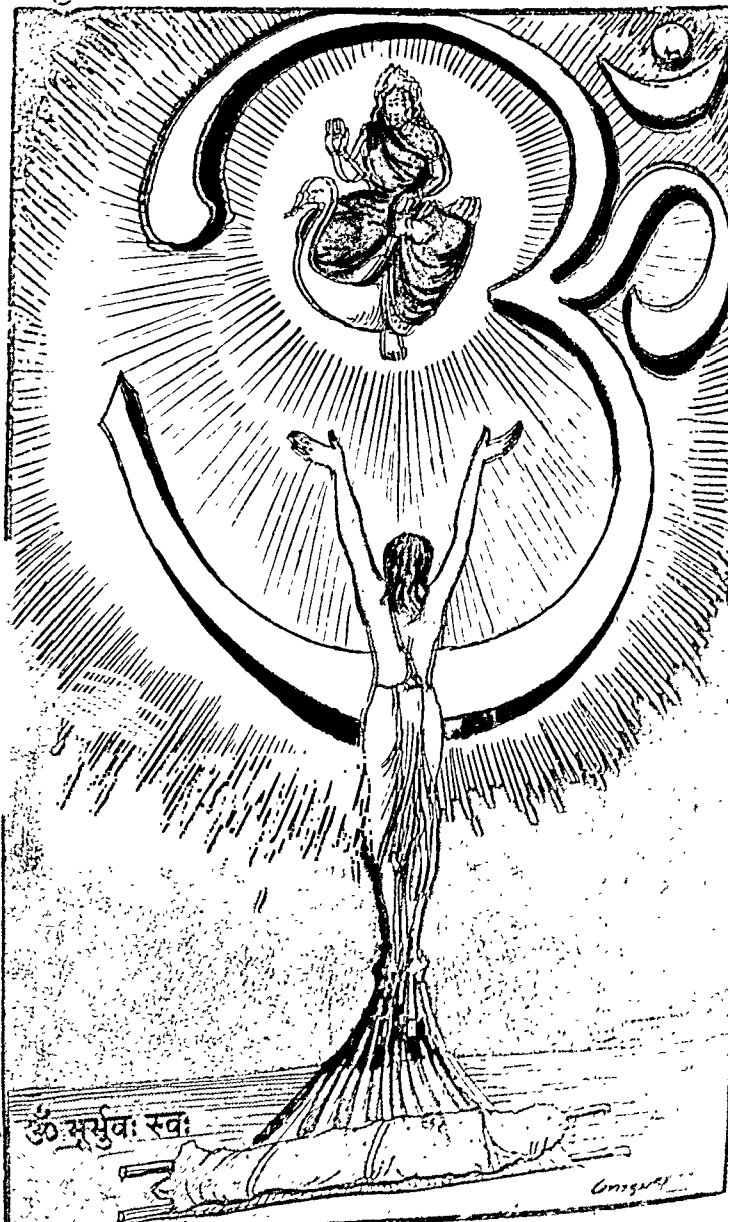
२४--सद्गति और जीवन-मुक्ति

आत्मा को परमात्मा में मिला देना, जोड़ देना, यही योग का उद्देश्य है। परमात्मा से बिछुड़ी हुई आत्मा जब तक अपने उद्गम-केन्द्र में नहीं मिल जाती तब तक वह माता से बिछुड़े बच्चे की तरह दुःखी और अशान्त रहती है। जन्म-मरण के चक्र में नाचता हुआ जीव चौरासी लाख योनियों में फिरता रहता है और नाना प्रकार के त्रास सहता हुआ वासना और कामना के संस्कारों में बँधकर घिसटता रहता है।

इस दुरवस्था से त्राण पाने के लिए ही आध्यात्मिक साधना का पथ है। योगी लोग संसार का त्याग करके अत्यन्त कष्ट-साध्य तपश्चर्यायें करते हैं जिससे भव-बन्धनों को काट कर परमात्मा को प्राप्त कर सकें। सत्संग, स्वाध्याय, कथा, कीर्तन, जप, यज्ञ, तीर्थ, दान आदि में यही उद्देश्य प्रधान रहता है कि बन्धनों से छुटकारा प्राप्त करके आत्मा अपने उद्गम-केन्द्र परमात्मा का साक्षात्कार कर सके, उसमें लीन हो सके। यही जीवन का परम लक्ष्य है। मुक्ति को ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ माना गया है। जिसने यह सफलता प्राप्त करली समझना चाहिए कि उसने जीवन लाभ पा लिया, वह धन्य हो गया।

ऊर्ध्व गति के लिए जितने भी साधन हैं उनमें गायत्री उपासना सर्वश्रेष्ठ है। जैसे बँधी हुई कली सूर्य की उष्णता पाकर आप खुलने लगती है और थोड़े ही काल में सुविकसित पुष्प बन जाती है, उसी प्रकार आत्मा के बन्धन भी गायत्री तप से अपने आप खुलने लगते हैं और अन्तः भूमिका विकसित होकर कुछ समय में उस स्थिति पर पहुँच जाती है जिसे परमहंस गति, सिद्धावस्था, समाधि, आत्म-साक्षात्कार, बन्धन-मुक्ति, ईश्वर-प्राप्ति, ब्रह्म-निर्वाण या परमानन्द कहते हैं।

सदन कसाई, गणिका, अजामिल, हिरण्यकशिपु आदि दुष्टों का उद्धार हुआ तथा शबरी, अहिल्या, द्रौपदी, वृन्दा आदि नारियाँ और जटायु, निषाद, नरसी जैसे साधारण श्रेणी के जीव सद्गति को प्राप्त हुए। ऐसी अद्भुत भगवत्कृपा, जिससे स्वल्प प्रयास में ही जीव तर जाय, गायत्री माता के अनुग्रह से प्राप्त हो सकती है।

चित्रों में पंचाक्षरी गायत्री

इस पुस्तक में चित्रों के साथ पूरा गायत्री मन्त्र न देकर स्थानाभाव से संक्षिप्त पंचाक्षरी गायत्री (ॐ भू भुर्वः स्वः) ही दिया गया है। पंचाक्षरी से ही पूर्ण मन्त्र का उद्भव हुआ है, इसलिए मूल मन्त्र भी वही है।